मूर्धन्य संपादक

हिन्दी पत्रकारिता के प्रथम पंक्ति के पत्रकार : प्रताप नारायण मिश्र

भारतेन्दु युग के प्रखर व ओजस्वी पत्र 'ब्राम्हण' के संस्थापक, प्रकाशक व संपादक थे प्रताप नारायण मिश्र। 15 मार्च 1883 को कुछ मित्रों के सहयोग से 'ब्राम्हण' मासिक पत्र का प्रकाशन किया गया। सादगी के साथ फक्कड़पन, सजीवता के साथ बांकपन इस पत्र की विशेषता थी, इन्हीं विशेषताओं के कारण भारतेन्दुकालीन साहित्यकारों ही नहीं पत्रकारों मे भी प्रताप नारायण मिश्र का महत्वपूर्ण स्थान रहा। भारतेन्दु मंडल के लेखकों में वे विशेष सम्मानित थे। कवि के साथ ही मौलिक निबंधकार एवं नाटककार थे। ' हिन्दी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल उनके योगदान को चिन्हित करते हुए लिखते हैं कि - 'पं. प्रताप नारायण मिश्र एवं पं. बालकृष्ण भट्ट ने हिन्दी साहित्य में वही काम किया है जो अंग्रेजी साहित्य में एडीसन और स्टील ने किया है।' मिश्र जी हिन्दी के प्रथम शैलीगत निबंधकार थे। उन्होंने समसामयिक विषयों पर लगभग 300 निबंध लिखे। बंकिमचंद्र चटर्जी व ईश्वरचंद्र विद्यासागर सहित अन्य कई बांग्ला रचनाओं का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया। और 35 वर्ष की अल्पायु में चालीस से अधिक पुस्तकें लिखीं।

संपादक

भारतेन्दु युग के अप्रतिम निबन्धकार एवं पत्रकार पं. प्रताप नारायण मिश्र ने दिनांक 15 मार्च 1883 से कानपुर से 'ब्राह्मण' का संपादन करके हिन्दी पत्रकारिता, भाषा एवं साहित्य के इतिहास में एक नए युग शुभारम्भ किया था। उन दिनों प्रयाग की अपेक्षा कानपुर ही हिन्दी का गढ़ था। जिस उत्साह, लगन और त्याग से उन्होंने इस पत्र का संपादन किया था, वह गौरवशाली इतिहास बन चुका है। इस इतिहास के प्रति वर्तमान पीढ़ी को सजग और भिज्ञ रहना आवश्यक है। पं. प्रताप नारायण मिश्र के पूर्व 30 मई 1826 को कानपुर के ही पं. युगल किशोर शुक्ल ने कोलकाता से हिन्दी के प्रथम समाचार पत्र 'उदन्त मार्त्तंड' का संपादन-प्रकाशन कर युगांतकारी कार्य किया था। दुर्भाग्य से इस पत्र की पुरानी फाइलें कहीं भी उपलब्ध नहीं हैं।

भारत के प्रथम स्वतंत्रता संग्राम 1857 के एक वर्ष पूर्व पं. मिश्र का जन्म कानपुर में हुआ था। देशवासी आत्मसम्मान की लड़ाई स्वयं लड़ रहे थे। कम्पनी का राज समाप्त होकर अंग्रेजी सरकार ने अपनी हुकूमत स्थापित कर ली थी। ऐसे ही माहौल में पं. मिश्र की शिक्षा-दीक्षा हुई। सन 1871 तक उन्होंने कानपुर से मिडिल स्कूल तथा क्राइस्ट चर्च स्कूल में शिक्षा पाई। एन्ट्रेंस की परीक्षा पास किए बिना ही उन्होंने पढ़ाई छोड़ दी और साहित्य साधना में जुट गए। मूलतः वे कवि थे। हिन्दी से उन्हें लगाव था अतः भारतेन्दु को उन्होंने अपना गुरू मान लिया था। साहित्य सेवा के लिए उन्होंने 'ब्राह्मण' पत्र का प्रकाशन प्रारम्भ किया था।

पं. मिश्र ने 27 वर्ष की आयु में मासिक 'ब्राह्मण' का संपादन 15 मार्च 1883 को प्रारम्भ किया। निर्भीक पत्रकारिता की नींव के पत्थर के रूप में इसे जाना जाता है। यह रायल अठपेजी प्रकाशन ही अपने आप में एक ऐतिहासिक घटना थी। यह जनसाधारण का पत्र था। इसमें लेख, समाचार, विज्ञापन, संपादक के नाम पत्र आदि सामग्री नियमित रूप से प्रकाशित होती थी। संपादक के नाम पत्र प्रकाशित करना जनता को अभिव्यक्ति का माध्यम उपलब्ध कराना था। इसके माध्यम से जनसमूह की कठिनाइयों को स्थानीय शासन तक पहुँचाने का अवसर मिलता था और इससे जनता में जागृति का भी संचार होता था।

'ब्राह्मण' जाति या वर्ग विशेष का पत्र न था, न ही इसकी सामग्री किसी एक विषय पर केन्द्रित हुआ करती थी। यह सम्पूर्ण

साहित्यिक समाचार पत्र था, जिसमें समाज के सभी वर्ग के शिक्षित और होनहार लेखक लिखा करते थे। इसके उद्देश्य के रूप में संपादक ने घोषणा की थी कि - 'हम वह ब्राह्मण नहीं है कि केवल दक्षिणा के लिए ठकुरसुहाती बातें करैं। अपने काम से काम, कोई बने या बिगड़े, प्रसन्न रहे या अप्रसन्न ही, अन्तःकरण से वास्तविक भलाई चाहते हुए अपने ग्राहकों का कल्याण करना ही हमारा मुख्य कर्तव्य होगा।'

यहाँ ग्राहकों का अर्थ पाठकों से है जो जन साधारण हुआ करते हैं। सामाजिक सरोकार के उद्देश्य से निकले पत्र को निर्भीक होना ही पड़ता है। अन्यथा वह अपने घोषित उद्देश्य की पूर्ति नहीं कर सकता। 'ब्राह्मण' के जो भी अंक देखने को मिलते हैं उससे अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समय में भाषा का स्वरूप कैसा था, अभिव्यक्ति का दायरा कितना विस्तृत था और सामाजिक चेतना की क्या स्थिति थी। ब्राह्मण में देश के सभी जाने माने लेखक और साहित्यकार लिखा करते थे। जैसे- बाबू राधाकृष्ण दास, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, अयोध्या सिंह उपाध्याय, ब्रदीदीन शुक्ल, काशीनाथ खत्री, राधाचरण गोस्वामी, श्रीधर पाठक आदि।

'ब्राह्मण' में समालोचना शीर्षक से पुस्तकों की समीक्षा भी छपती थी इसके लिए एक अलग स्तम्भ रहता था। तब तक आधुनिक समालोचना के सिद्धांत का निरूपण नहीं हुआ था और न ही विविध विषयों की अधिक पुस्तकें ही प्रकाशित होती थीं, फिर भी समालोचना कर पुस्तक की उपयोगिता और गुण-दोषों का दिग्दर्शन तो किया ही जाता था। आवधिक पत्र-पत्रिकाओं का पुनरीक्षण भी किया जाता था, जिसे समालोचना कहा जाता था। समाचारों के सम्प्रेषण की भावना प्रबल नहीं हो पाई थी। समाचारों के माध्यम से मनोरंजन और ज्ञानवर्धन करना ही मुख्य उद्देश्य हुआ करता था इसीलिए तत्कालीन पत्रों की प्राप्ति, स्वीकार करते हुए उनके कुछ उल्लेखनीय समाचारों का जिक्र भी कर दिया जाता था। वैसे भी उस समय हिन्दी के काफी कम समाचार पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित हो रहे थे। अधिकतर वैष्णव पत्रिका, हिन्दोस्थान, दिनकर, प्रकाश, आनंद कादम्बिनी, हरिश्चन्द्र चंद्रिका, उचित वक्ता की समीक्षा 'ब्राह्मण' में छपा करती थी।

उन्होंने मास्टर नन्हेंमल की 'सुखवार्ता' महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'देवी स्तुति शतक', पं. अंबिकादत्त व्यास की 'लतिका नाटिका' लाला श्रीनिवासदास के 'तप्त संवरण नाटक' पं. कनछेदी तिवारी की 'श्रृंगार लतिका', भारतेन्दु की 'भारत दुर्दशा', पं. बदरी नारायण चौधरी की 'आनन्द कादंबिनी' और पं. श्रीधर पाठक की अनेक पुस्तकों की समालोचना स्वयं लिखी और प्रकाशित की थी। 'ब्राह्मण' ने समाज में अपनत्व की भावना रोपी थी। समाज का प्रत्येक व्यक्ति उसे अपना समाचार पत्र समझता था और 'ब्राह्मण' भी इस अपनत्व को प्रगाढ़ करते हुए समाज की कठिनाइयों की बातें शासन के ध्यान में लाने की भरपूर कोशिश करता रहा। उसकी भाषा में मिठास थी। हिन्दी गद्य को सहज, सुगम और प्राणवन्त स्वरूप प्रदान करने के लिए इसे सदा याद किया जाता रहेगा।

पं. प्रताप नारायण मिश्र अमीर नहीं थे। समाचार पत्र के ग्राहक, जिनकी संख्या आज के समान अधिक नहीं हुआ करती थी, कम ही थे। पहले वर्ष के अंत में केवल 407 ग्राहक थे। वे भी अपना शुल्क समय पर नहीं देते थे। तब पत्र के प्रकाशन में कठिनाई आ जाती थी। इसलिए संपादक समय समय पर ग्राहकों पर नाराज होकर उनसे शुल्क समय पर भेजने का निवेदन किया करते थे। एक बार हताश हो उन्होंने लिखा - 'हमने बेईमान ग्राहकों का नाम रजिस्टर से उड़ा दिया। ब्रह्मघातियों में धीरे-धीरे छाप देंगे। बाजे-बाजे महापुरुषों ने चार बरस में कौड़ी नहीं दी, बाजे दस-दस पन्द्रह-पन्द्रह रुपये यों लिये बैठे हैं, महीना दो महीना और देखते हैं, नहीं तो सबकी नामावली छापनी पड़ेगी। कहाँ तक मुलाहिजे के पीछे मार सहें। प्रेसवाले जानते हैं कि संपादक जमाभार हैं। संपादक बिचारा नादिहंतों की हत्या अपने सिर मुंडियाये हैं।' जब अधिकांश ग्राहकों ने शुल्क नहीं दिया तब विवश होकर ब्राह्मण में ऐसे लोगों की सूची छाप दी गई।

ब्राह्मण के प्रकाशन के ग्यारह वर्ष की अवधि साहित्य साधना और समाज सेवा की दृष्टि से पं. मिश्र के जीवन का स्वर्णिम काल है। ब्राह्मण के ग्राहक तो यद्यपि एक सौ भी नहीं थे, फिर भी पं. मिश्र की हिन्दी के प्रति धुन और पत्रकारिता के प्रति समर्पण के कारण ही स्वयं के खर्च और मित्रों के सहयोग से 'ब्राह्मण' का प्रकाशन कर उन्होंने जन जागृति और भाषा के प्रति सम्मान का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया।

पं. मिश्र ने मासिक 'ब्राह्मण' को अधिक रुचिकर बनाने के लिए अनेक व्यंग्यपूर्ण लेख भी प्रकाशित किए। ये समसामयिक विषयों से ही संबंधित होते थे, जैसे- मिडिल क्लास, इनकमटैक्स, होली है अथवा होरी है, आदि। साथ ही साधारण से साधारण विषयों पर उत्तम मुहावरेदार सजीव भाषा में निबन्धों को लिखवाकर उन्हें भी वे प्रकाशित करते थे। जैसे- 'सोना', 'परीक्षा', 'बालक', 'नास्तिक', आदि।

उसी समय भारतेन्दु की 'कविवचन सुधा' भी निकल रही थी। परंतु 'ब्राह्मण' और उसमें काफी अंतर था। 'कविवचन सुधा' में प्रायः कविताएँ ही होती थीं। पं. मिश्र ने ब्राह्मण को हिन्दी भाषा के साहित्य की प्रतिनिधि पत्रिका का स्वरूप दिया था। उनके इस प्रयास को बाद में महावीर प्रसाद द्विवेदी ने 'सरस्वती' के माध्यम से आगे बढ़ाया।

ब्राह्मण की पुरानी फाइल के अवलोकन से ज्ञात होता है कि वह उस समय के देशकाल को आईने के समान प्रतिबिम्बित करता है। उसमें संपादक के विचित्र व्यक्तित्व की झाँकी मिलती है और कानपुर तथा देश की स्थिति का चित्रण भी मिलता है। संपादक में ग्रामीण सरलता, अल्हड़पन और फक्कड़पन के साथ निर्मलता

के दर्शन भी होते हैं। हास्य और व्यंग्य के छींटे भी और निर्भीकता भी। संपादक की लिखने की कला निराली थी। बात करते समय सबका ध्यान खींच लेने की उसमें अद्‌भुत शक्ति थी। यद्यपि मिश्र जी हिन्दी के हिमायती थे परंतु साथ ही उर्दू कविता के प्रेमी और रचयिता भी थे। उनकी लिखी हुई उर्दू, फारसी की अनेक गजलें, मरसिये और कसीदे काबिले तारीफ हैं। उन्होंने 'दीवाने-बरहमन' लिखा। संस्कृतज्ञ होते हुए भी वे आम-फहम हिन्दी के संदेशवाहक थे।

वे ब्रिटिश शासन के उग्र आलोचक थे। यह साहस और निडरता का परिचायक है। जी हुजूरी से वे कोसों दूर थे। जातियों की कुरीतियों के वे कठोर विरोधी भी थे और समाज सुधार में विश्वास करते थे। इसलिए वे आधुनिक युग के निर्माताओं में से एक है।

अंग्रेज सरकार की कड़ी और सार्थक आलोचना ब्राह्मण ने अनेक बार की। सरकारी विभागों में तब भी रिश्वत का बोलबाला था। ब्राह्मण के 15 मई 1883 के अंक में पं. मिश्र ने एक टिप्पणी लिखकर सरकारी कर्मचारियों की बेईमानी और शासन द्वारा उसके प्रति आँखें बंद किए रहने का तीव्र विरोध किया। इस पर सरकारी अधिकारियों ने जब आपत्ति की तब पं. मिश्र ने लिखा - 'अपने देश-भाईयों का दुख-सुख ज्यों का त्यों प्रकाश करना हमारा मुख्य कर्तव्य है।' सन 1884 में जब प्रयाग में पं. बालकृष्ण भट्‌ट को कुछ गुंडों ने पीटा, तब पं. मिश्र ने एक तीखा लेख लिखा। अंग्रेजों द्वारा अपने वफादारों को उपाधियों तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट बनाने की प्रथा का भी उन्होंने कड़ा विरोध किया और 1885 के ब्राह्मण में लिखा- 'दस रुपए महीने की पिसौनी करनेवाले बाबू लोगों के लिए तो मिडिल क्लास के पास की पख लगी है। वह कैसे ही योग्य क्यों न हों पर बिना सर्टिफिकेट नौकरी मिलना मुहाल है। परंतु हमारे हाकिम आनरेरी मजिस्ट्रेट जिन पर हमारे दुख-सुख, मानापमानादि निर्भर हैं, उनसे कोई यह भी नहीं पूछता कि क,ख,ग कुछ जानते हो कि नहीं। इसका क्या कारण है।'

मिश्र जी जो कहते थे उसे पहले करते थे। वे कथनी के विरुद्ध और करने के पक्षपाती थे। और आज जब हम स्वतंत्र हैं- ठीक इसके विपरीत कार्य कर रहे हैं। हमने अपने इतिहास की वे सभी बातें स्वार्थवश भुला दीं जिसमें सामान्य सामाजिक न्याय और विकास निहित हैं।

पं. मिश्र हिन्दी पत्रकारिता की पहली पंक्ति के पत्रकार थे। पत्रकारिता की उनकी सूझबूझ और भाषा अनूठी थी। इस संबंध में उन्होंने स्वयं भी 'ब्राह्मण' के अंकों में लिखा है। उन्होंने पत्रकारिता के अनेक मौलिक सिद्धांतों का निरूपण किया और स्वयं भी शब्दशः पालन किया तथा उनकी रक्षा की लड़ाई भी लड़ी। समाचार पत्रों को प्रकाशित करने की आवश्यकता को प्रतिपादित करते हुए उन्होंने लिखा- 'हम भिखमंगे नहीं कि केवल ग्राहकों की खुशामद का ख्याल रखें। हम भाट नहीं कि बड़े आदमियों और राजपुरुषों की निरी झूठी स्तुति गाया करें। जो हो सो हो, हम 'ब्राह्मण' हैं, इससे हमारा धर्म नष्ट होता है और हम पतित हुए जाते हैं, यदि हम अत्यंत दीन और असमर्थ देश-भाईयों पर अत्याचार होते सैकड़ों मनुष्यों से सुनें और फिर उसे सर्व साधारण व सरकार पर विदित न करें।' इस प्रकार उन्होंने समाचार पत्र के सामाजिक सरोकारी पक्ष को अधिक महत्व देते हुए, उसके आड़े आनेवाली बाधाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया था। दुर्भाग्य से आज पत्रकारिता उन संस्कारों से बिलकुल विमुख होती जा रही है।

पं. मिश्र साहसी पुरुष थे उन्हें हातोत्साहित करने और कराने के अनेक प्रयत्न हुए परंतु वे अडिग रहे और चुनौतियों का मुँहतोड़ उत्तर भी दिया। इसी संदर्भ का एक उदाहरण इस प्रकार है - अलवर के राजा के पास 'ब्राह्मण' जाता था। कुछ ही दिनों बाद उन्होंने उसे लेना बंद कर दिया। रियासत की ओर से ब्राह्मण को अंक लौटाते हुए एक पत्र द्वारा यह भी निवेदित किया गया कि आईंदा से ब्राह्मण की प्रति न भेजी जाये। इस पत्र को पं. मिश्र ने 'ब्राह्मण' के 15 फरवरी 1884 के अंक में छापते हुए हिन्दी के दुर्भाग्य पर करुणा व्यक्त की। उस समय हिन्दी के इने-गिने पत्र ही थे। कालांतर का 'हिन्दोस्थान' हिन्दी का एकमात्र दैनिक पत्र था।' दोनों के ग्राहक बहुत कम थे। फिर भी उन्हें प्रकाशित करनेवालों की हिम्मत और लगन की आज जितनी प्रशंसा की जाए कम ही होगी।

पं. मिश्र हिन्दी पत्रकारिता की पहली पंक्ति के पत्रकार थे। पत्रकारिता की उनकी सूझबूझ और भाषा अनूठी थी। इस संबंध में उन्होंने स्वयं भी 'ब्राह्मण' के अंकों में लिखा है। उन्होंने पत्रकारिता के अनेक मौलिक सिद्धांतों का निरूपण किया और स्वयं भी शब्दशः पालन किया तथा उनकी रक्षा की लड़ाई भी लड़ी।... समाचार पत्र के सामाजिक सरोकारी पक्ष को अधिक महत्व देते हुए, उसके आड़े आने वाली बाधाओं पर कोई ध्यान नहीं दिया था। दुर्भाग्य से आज पत्रकारिता उन संस्कारों से बिलकुल विमुख होती जा रही है। पं. मिश्र साहसी पुरुष थे उन्हें हतोत्साहित करने और कराने के अनेक प्रयत्न हुए परंतु वे अडिग रहे और चुनौतियों का मुँहतोड़ उत्तर भी दिया।

पं. मिश्र बीमारी की हालत में भी ब्राह्मण को चलाते रहे। जब थक गए तब हारकर ब्राह्मण को सात वर्षों बाद बंद करने की घोषणा करनी पड़ी। सातवें वर्ष के अंतिम अंक में - 'अंतिम संभाषण' शीर्षक लेख में उन्होंने अपने हृदय की सारी वेदना उड़ेलते हुए लिखा -

'दरो-दीवार पै हसरत से नजर करते हैं।
खुश रहो अहले वतन हम तो सफर करते हैं।।'

पं. मिश्र की मृत्यु 6 जुलाई 1894 को हुई। इसी मास प्रकाशित अंक उनके संपादकत्व का अंतिम अंक था उनके बाद कुछ दिनों तक किसी प्रकार 'ब्राह्मण' निकलता रहा। कब बंद हुआ, इसकी सही जानकारी की खोज होना अभी बाकी है। पं. मिश्र कुछ समय के लिए कालाकांकर के दैनिक हिंदोस्थान में सहकारी सह संपादक भी रहे। जुलाई 1889 में कालाकांकर गए और वहाँ से एक वर्ष बाद कानपुर लौट आए थे। इस बीच 'ब्राह्मण' का संपादन वे करते रहे थे।

पं. प्रतापनारायण मिश्र के युग के पूर्व कानपुर में रंगमंच का इतिहास था ही नहीं। भारतेन्दु के नाटकों की धूम प्रताप नारायण मिश्र के युग में ही कानपुर में भी प्रारंभ हुई। इसे पं. मिश्र ने प्रोत्साहित किया। 'सत्य हरिश्चन्द्र', 'भारत-दुर्दशा', 'नील देवी' आदि नाटकों का मंचन कानपुर में भी पं. मिश्र की प्रेरणा से प्रारंभ हुआ। कानपुर में बंगाली समाज ने जब 'भारत-दुर्दशा' का मंचन किया तब 'ब्राह्मण' के 15 अक्टूबर 1885 के अंक में उन्होंने इसके मंचन में हुई अव्यवस्थाओं की ओर ध्यान आकर्षित करते हुए लिखा - 'जिनको अद्वितीय नाट्यकार होने का कुछ कुछ सच्चा अभिमान है, उन्होंने भारत भाग्य की प्रारम्भवाली लावनी (रोवहु सब मिली कै) का एक चौक गाया और गला फाड़-फाड़ कर भारतेन्दु जी की कविता को बलि प्रदान करने लगे। कई एक दर्शकों ने कहा- 'क्या भारत दुर्दशा की दुर्दशा की है?'... कई लोगों ने कहा, 'क्या खूब, नाटक हो तो ऐसा हो।' हमको किसी से द्वेष नहीं है पर धर्मानुसार कहते हैं, कि आगे से जरा ध्यान रक्खा करें।' इसी के बाद पं. मिश्र ने कानपुर में 'श्री भारत मनोरंजनी सभा' की स्थापना की, जिसके तत्वाधान में नाटक खेले जाने लगे। पं. प्रताप नारायण मिश्र द्वारा लिखे गए नाटक 'श्री हठी हमीर', 'कलिप्रवेश', 'नीति रूपक' भी खेले गए। पं. मिश्र ने अनेक नाटक और रूपक लिखकर हिन्दी साहित्य की संवृद्धि की।

उस जमाने के हिन्दी के सभी लेखकों ने हिन्दी साहित्य में अन्य भाषाओं के साहित्य की उल्लेखनीय रचनाओं का अनुवाद कर, गौरवान्वित किया था। उन्हें अनेक भाषाओं का गहन ज्ञान था और आदान-प्रदान को वे साहित्यकार का कर्म मानते थे। इससे एकता की नई ऊंचाइयाँ स्थापित होती थीं और सृजनात्मकता को समतल पर खड़े होकर आगे बढ़ने का बल भी मिलता था। पं. मिश्र को हिन्दी के अलावा अंग्रेजी, फारसी, संस्कृत, उर्दू और बांग्ला भाषाओं का अच्छा ज्ञान था किंतु उन्हें बांग्ला और हिन्दी में विशेष रुचि थी। हिन्दी में अनेक मौलिक ग्रंथों को लिखने के साथ ही उनके प्रायः सभी अनुदित ग्रंथ बांग्ला भाषा से ही अनुदित किए थे। इसकी प्रेरणा उन्हें भारतेन्दु हरिश्चन्द्र से मिली थी, जिन्हें वे अपना गुरू भी मानते थे। मिश्र जी ने बांग्ला से 6 उपन्यासों का अनुवाद किया जिनमें 'राधारानी' 'कपाल-कुंडला', 'अमर सिंह' शामिल हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने अन्य 10 पुस्तकों का भी हिन्दी में अनुवाद किया था। उन्होंने कालिदास के अभिज्ञान शाकुंतलम का भी हिन्दी में स्वतंत्र अनुवाद किया था।

(यह आलेख 'संतोष कुमार शुक्ल' की चर्चित पुस्तक 'मूर्धन्य संपादक' से लिया गया है।)